विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - ५, शुक्रवार, तारीख १५-८-१९८०
वचनामृत-६२, १०५, १४०, ४०१ प्रवचन-८

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे, चिन्तवन करे, मन्थन करे, उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो, तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषय में न टिके तो अन्य में बदले, उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे, उपयोग में सूक्ष्मता करते-करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है॥ ६२॥

वचनामृत, ६२। फिर से किसी को सुनने का भाव है। सम्यग्दर्शन पाने की कला है। जिसको सम्यग्दर्शन हो, उसको तो आनन्द का अनुभव होता है। इसलिए किसी को पूछना पड़े या किसी को कहना पड़े या उस विषय में किसी से कुछ सुनना पड़े, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन जो है, वह तो अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, अनन्त आनन्द के स्वाद का अनुभव करता हुआ सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आहाहा! और एक सम्यग्दर्शन होने के बाद पंचम गुणस्थान और मुनि की दशा आती है। पहले नहीं आती। यहाँ ६२ में तो सम्यग्दर्शन सन्मुख होने के योग्य कौन है, यह कहते हैं।

जीव ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे,... आहाहा! श्रवण के लिये श्रवण नहीं। ज्ञायकस्वरूप भगवान अन्दर, उसके लक्ष्य से श्रवण करे। मुझे आयेगा तो मैं किसी को कह सकूँ, मैं उपदेश दे सकूँ, ऐसा कोई लक्ष्य नहीं। ज्ञायक के लक्ष्य से। मात्र जाननेवाला आत्मा त्रिकाली ज्ञायक के लक्ष्य से श्रवण करे। **चिन्तवन करे,...** उसके लक्ष्य से चिन्तवन करे। उसका लक्ष्य छोड़कर चिन्तवन-बिंतवन (करे), वह कोई चीज़ नहीं है। और **मन्थन करे,...** ज्ञायक के लक्ष्य से अन्दर मन्थन करे। सूक्ष्म बात है, प्रभु! अभी तो समकित प्राप्त करने की रीति की कला है यह। अन्तर स्वरूप दृष्टि में अनुभव में जब तक आया नहीं, तब तक उसके सन्मुख (होकर) मन्थन करे। आहाहा!

उसे भले कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो, तथापि सम्यक्त्वसन्मुखता होती है। अन्तर में यदि स्वसन्मुख से श्रवण, मनन, चिन्तवन हो, स्वसन्मुख से श्रवण, चिन्तवन, मनन हो तो वह सम्यग्दर्शन-सन्मुख होता है। **अन्दर दृढ़ संस्कार डाले,...** बात वह कि एक ही धुन लगे अन्दर। आनन्दसागर प्रभु ज्ञायक, उस ज्ञायक की अन्दर धुन लगे। उस धुन में दूसरी कोई चिन्ता रहे नहीं। ऐसी धुन लगे तो वह समकित-सन्मुख है। ज्ञायक की धुन लगे। कोई वाँचन की, श्रवण की या दूसरी नहीं। अन्दर ज्ञायक की धुन लगे। चिदानन्द भगवान ज्ञायकस्वरूप चैतन्य दल, अरूपी महासागर। स्वयंभूरमण समुद्र में तल में रेत नहीं है। स्वयंभूरमण समुद्र है, (उसके) तल में रेत नहीं है। अकेले हीरा-माणिक भरे हैं। रत्न भरे हैं। सुना है? स्वयंभूरमण समुद्र में नीचे अकेले रत्न भरे हैं। रेत नहीं है। आहा..! दुनिया का दिखाव तो देखो। बाहर का दिखाव। स्वयंभूरमण असंख्य योजन लम्बा है। पूरा रत्न से भरा है, रेत नहीं। यह भगवान तो उसे भी जाननेवाला-देखनेवाला अपने में रहकर, तो उसकी कीमत क्या कहना! उसमें अनन्त रत्न ऐसे भरे हैं कि स्वयंभूरमण तो जड़ का रत्न है, यह चैतन्य आकर है। चैतन्य के रत्न का समुद्र प्रभु है। हिन्दी में छे आ जाता है।

इसलिए कहते हैं कि **अन्दर दृढ़ संस्कार डाले, उपयोग एक विषय में न टिके...** यह क्या कहते हैं? ज्ञान लक्ष्य में लेने पर वहाँ कदाचित् उपयोग न टिके तो यह आनन्द है, आत्मा आनन्द है, ऐसे उपयोग को पलटे। आत्मा अन्दर शान्त वीतरागस्वरूप है, ऐसे विचार में उपयोग को पलटाये। एक ही उपयोग में न रह सके तो उपयोग (पलटे)। परन्तु यह उपयोग, हों अन्दर। अन्दर गुण का उपयोग और भेद ऊपर लक्ष्य को पलटे। आहाहा! **तो अन्य में बदले,...** तो अन्य में बदले। **उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,...** जिसमें कोई चिन्ता नहीं है। पूरी दुनिया से उदास भाव। पूरी दुनिया मेरी नहीं है, मैं तो एक आत्मा आनन्द हूँ। आनन्द सिवा मेरी कोई चीज़ बाहर में नहीं है। ऐसी उदासीन अवस्था, उसमें करके उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे। आहाहा!

मुमुक्षु :- करे या होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह करे, तब होता है न। अपने आप हो जाता है, ऐसा नहीं। करे तो होता है। आहाहा!

उपयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म करे,... आहाहा! पर्याय में, प्रत्येक द्रव्य की पर्याय में षट्कारक है। प्रत्येक द्रव्य, जितने अनन्त द्रव्य है, उसकी एक समय की पर्याय में षट्कारक है। पर्याय पर्याय की कर्ता; पर्याय कर्ता का कार्य-कर्म; पर्याय पर्याय का साधन-करण; पर्याय करके पर्याय में रखी-सम्प्रदान; पर्याय से पर्याय हुई और पर्याय के आधार से पर्याय हुई। आहाहा! अनन्त जितने द्रव्य जगत में है, भगवान ने जो कहे, प्रत्येक द्रव्य की एक समय की पर्याय में षट्कारक परिणमन है। आहाहा! अज्ञानी को भी अज्ञान में षट्कारक परिणमन है। ज्ञानी को ज्ञान और आनन्द में षट्कारक का परिणमन है। आहाहा! समझ में आया? वह षट्कारक स्वसन्मुख करे। भले वस्तु बनी न हो, परन्तु प्रत्येक षट्कारक का परिणमन भगवान तो कहते हैं। जितने द्रव्य हैं, अरे..! एक परमाणु, एक परमाणु की पर्याय। एक परमाणु की पर्याय, उसमें षट्कारक है। आहाहा! कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादन, अधिकरण। छह बोल के सिवा कोई तत्त्व है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अपने आत्मा में लक्ष्य लगाकर, उपयोग सूक्ष्म करके अन्दर धुन लगावे। आहाहा! **उपयोग में सूक्ष्मता करते-करते, चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए...** सूक्ष्म उपयोग में षट्कारक का परिणमन करके, स्वसन्मुख करके, स्व ज्ञायक-सन्मुख करना। अनन्त काल से किया नहीं। अनन्त काल से मुनिव्रत द्रव्यलिंगी अनन्त बार धारण किया। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बैर ग्रैवेयक उपजायो।' उसमें कोई बाह्य की क्रिया से आत्मा को कुछ लाभ होता है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा!

अन्तर की क्रिया राग से रहित... प्रभु! सूक्ष्म बात है। विकल्प से भी भिन्न, अपना स्वरूप भिन्न है, ऐसा लक्ष्य करके **चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए...** जाणन, यह ज्ञान है। क्यों? - कि प्रगट में-पर्याय में प्रगट में आनन्द है नहीं। सब प्राणी को पर्याय में प्रगट आनन्द है नहीं। मिथ्यादृष्टि को। ज्ञान प्रगट है। ज्ञान की पर्याय प्रगट है। आहाहा! कहते हैं कि ज्ञानपर्याय द्वारा, प्रगट के द्वारा चैतन्यतत्त्व को (ग्रहण करे)। जाणकतत्त्व है। क्योंकि प्रगट में पर्याय में तो वह है। पर्याय में आनन्द कि जो अन्दर सूक्ष्म गुण है, उसकी पर्याय में है नहीं। समकिती नहीं है, मिथ्यात्वी है। उसे ज्ञान में ख्याल आ गया, ज्ञान में जाणन.. जाणन ज्ञान को पकड़कर। **चैतन्यतत्त्व को ग्रहण करते हुए आगे बढ़े, वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** वह जीव क्रम से इस प्रकार सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

देव-गुरु-शास्त्र से नहीं, शब्द से नहीं, श्रवण से नहीं। आहाहा! जो कोई वाणी भगवान की सुने, उससे जो ज्ञान होता है, उससे भी आत्मा की सन्मुखता नहीं होती। आहाहा! क्योंकि सब पर सन्मुख दशा है। आहाहा! भगवान की वाणी सुने परन्तु पर सन्मुख दशा है। परसन्मुख दशा स्वसन्मुख में काम नहीं करती। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अभ्यास नहीं है अन्दर, इसलिए सूक्ष्म लगे। अभी तो प्राप्त करने की रीत यहाँ कही है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञानपर्याय प्रगट है, क्षयोपशमभाव प्रगट है, आनन्द प्रगट नहीं है। इसलिए चैतन्य को ग्रहण करके, यह ज्ञान मैं हूँ, ऐसे ग्रहण करके। आहा..! **वह जीव क्रम से सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।** लो। किसी ने लिखा था। चिट्ठी पड़ी थी। फिर से ६२वाँ लो। वह लिया। अब १०५। आहाहा! शान्ति से बात समझने की चीज है, भगवान! यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं है।

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है। ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है॥ १०५॥

१०५। **आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है।** क्या कहते हैं? समयसार में चला है। पुण्य, पाप, आस्रव अधिकार पूरा करे, तब (लिखते हैं), यह वेश पूरा हुआ। ऐसा पाठ में है। ऐसे मोक्ष अधिकार पूरा हुआ वहाँ भी ऐसा लिखा है। मोक्ष का वेश पूरा हुआ। क्योंकि मोक्ष तो एक समय की पर्याय है। भगवान तो त्रिकाली द्रव्य है। उसे मोक्ष का वेश भी लागू नहीं पड़ता। आहाहा! **आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही...** ज्ञायकपने का ही **वेश धारण किया हुआ है।** आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई! मोक्ष को भी वेश कहा है। समयसार में है, पाठ है। मोक्ष ... फिर कहते हैं, मोक्ष का वेश पूरा हो गया, मोक्ष का वेश चला गया। फिर दृष्टि एक द्रव्य पर रही है, आनन्द की एक बात रह गई। मोक्ष की पर्याय पर लक्ष्य नहीं, द्रव्य पर लक्ष्य है। समकिती का द्रव्य ध्रुव चिदानन्द आनन्द भगवन्त, उस पर उसका लक्ष्य है। इसलिए

समयसार में प्रत्येक अधिकार में, यह संवर का वेश पूरा हो गया, निर्जरा का वेश पूरा हो गया, निकल गये। वेश निकल गये। आता है न उसमें ? आहाहा ! मोक्ष का वेश निकल गया। आहाहा ! क्योंकि मोक्ष तो एक पर्याय है। वह तो ज्ञायकभाव का (एक) वेश है। मोक्ष से भी ज्ञायकभाव का वेश त्रिकाल है। आहाहा ! मोक्ष की पर्याय तो नयी प्रगट होती है, वह कायम नहीं है। ज्ञायकपने का वेश तो त्रिकाल है। आहाहा ! भगवन्त आत्मा ज्ञायकस्वभाव का वेश त्रिकाल है। संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि का वेश तो (क्षणिक) है, वह तो पलटता है। आहाहा !

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही... एक ज्ञायकपना। ज्ञायक त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल। मोक्ष भी एक समय की पर्याय है और मोक्ष, संवर, निर्जरा भी व्यवहारनय का विषय है। पर्याय है न ? पर्याय व्यवहारनय का विषय है। आहाहा ! भगवान मोक्ष के वेश में नित्य नहीं रहता, परन्तु ज्ञायक के वेश में नित्य रहता है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! आहाहा ! अकेला ज्ञायकद्रव्य, ज्ञायक हीरा, यह वेश त्रिकाल है। मोक्ष का वेश तो सादि-अनन्त है। संवर, निर्जरा का वेश तो सादि-सान्त है। बन्ध को एक ओर रखो। संवर, निर्जरा का स्वांग आत्मा पर हो तो सादि-सान्त है और मोक्ष का स्वांग सादि-अनन्त है और ज्ञायक का स्वांग अनादि-अनन्त है। आहाहा !

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल... त्रिकाल और एक **एक ज्ञायकपने का ही...** निश्चय से। सूक्ष्म बात है, प्रभु ! मोक्ष भी पर्याय-पलटती अवस्था है। वह भी सादि-अनन्त है। ज्ञायकस्वरूप.. आहा.. ! वह तो अनादि-अनन्त है। त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाल अखण्ड है। यहाँ एक कहा, वह एक है। आहाहा ! अखण्ड और एक त्रिकाल ऐसा ज्ञायकभाव का वेश त्रिकाल है। आहाहा ! **त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश...** ही अर्थात् निश्चय है। ज्ञायकपने का ही। आहाहा ! समकिती को या पंचम गुणस्थानवाले को या छट्ठेवाले को, सबको ध्रुव की धारा है। ध्रुव के ध्येय में पड़े हैं। आहाहा ! ध्रुव के ध्यान के ध्येय में धैर्य से... आहाहा ! धूणी-धूणी पर्याय में शान्ति की धूणी धखा। आहाहा ! त्रिकाल ज्ञायक के लक्ष्य से। दूसरी कोई भी क्रियाकाण्ड से, अरे.. ! संवर, निर्जरा हुई हो, उससे नयी शुद्धि की वृद्धि हो, ऐसा है नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है।

यह बहिन की वाणी अन्दर से निकली है। बहिन आयी नहीं है। उस समय अन्दर अनुभव में से आयी है। आनन्द में से भाषा आ गयी। किसी ने लिख लिया था। नहीं तो बाहर भी नहीं आये। आहाहा! क्या कहा?

भगवान आत्मा का वेश क्या? देश क्या? देश असंख्य प्रदेश। वेश ज्ञायकभाव। वहाँ दृष्टि देने से आत्मा की प्राप्ति होती है। एक वेश त्रिकाल ज्ञायकभाव। वहाँ दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। आहाहा! **ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से...** है? जो ज्ञायकतत्त्व है जाननेवाला, आहाहा! चैतन्य हीरा ध्रुव हीरा। एक ज्ञायक हीरा का **परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,...** कोई पर्यायवेश नहीं है। पुण्य और पाप तो नहीं है, आस्रव, बन्ध तो नहीं है, संवर, निर्जरा और मोक्ष भी नहीं है। आहाहा! ऐसा प्रभु अन्दर ज्ञायकभाव से विराजमान ध्रुवपने, उसका वह वेश त्रिकाल है। **परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,...** आहाहा! यह बाहर के वेश की बात नहीं है, हों! वस्त्र छोड़ दे, वह वेश नहीं है जीव का। बाह्य त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है नहीं। आत्मा में एक गुण ही ऐसा है। त्यागउपादानशून्यत्व शक्ति। पर का त्याग और पर का ग्रहण, उससे तो आत्मा त्रिकाल शून्य है। आहाहा! मात्र त्यागग्रहण हो तो व्यवहार से। प्रभु त्रिकाली ज्ञायक का ग्रहण करते हैं, वहाँ राग का त्याग हो जाता है। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,... भगवन्त आत्मा को नित्य टिकने के सिवा क्षणिक कोई वेश उसको नहीं है। आहाहा! **कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है।** द्रव्य को कोई पर्याय की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय की अपेक्षा भी द्रव्य को नहीं है। क्योंकि मोक्ष तो सादि-अनन्त है। वस्तु अनादि-अनन्त है। आहाहा! **कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है।** आहाहा! सूक्ष्म पड़े।

बहिन तो रात्रि में थोड़ा बोले थे। उसमें बहिनों ने लिख लिया था। नहीं तो वे तो मुर्दे की भाँति (है)। आत्मा के आनन्द में रहती है, बाहर की कुछ नहीं पड़ी। आहाहा! जन्मदिन आयेगा न? दूज। श्रावण शुक्ल दूज का जन्मदिन आयेगा। उनको हीरा से बधायेंगे। खड़े रहेंगे मुर्दे की भाँति। अभी तो शक्ति नहीं है। मैंने तो रात को कहा कि कुर्सी (रखो)। शक्ति नहीं है। बिल्कुल अशक्त हो गया है। आहार में कुछ नहीं। अकेला आत्मा.. आत्मा.. और आत्मा। बाकी कुछ नहीं। मैंने तो कहा, कुर्सी लाकर बैठना चाहिए।

आठ जन तो आये हैं।... आहाहा! रात्रि में (महिला सभा में) बहिन की यह वाणी निकल गयी है। आहाहा!

कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। उसे कोई पर्याय का वेश नहीं है कि हमेशा रहे। **आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में...** आहाहा! सिद्ध भी पर्याय है। द्रव्य जो त्रिकाली आनन्द का नाथ वज्रबिम्ब, उसमें से थोड़ा भी पलटा नहीं खाता। पर्याय पलटती है, वस्तु वज्रबिम्ब अन्दर चैतन्य आनन्दकन्द, अकेले चैतन्य के हीरा-माणेक भरे हैं। आहाहा! ऐसे आत्मा को पर की अपेक्षा (तो नहीं है, परन्तु) मुनि, केवलज्ञानी या सिद्ध, ऐसी एक भी **पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है।** आहाहा! कमजोरी बहुत आ गयी है। आहाहा! १०५वाँ बोल बहुत अच्छा आ गया है। मौके पर (आया है)।

आत्मा को त्रिकाली ज्ञायकभाव के वेश के सिवा, मुनि अर्थात् संवर-निर्जरा और मोक्ष का वेश उसे लागू नहीं पड़ता। उसकी तो अवधि है। यह तो अवधि बिना की चीज़ अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु (है)। आहाहा! जिसके ऊपर, नित्यानन्द प्रभु के ऊपर यह सब पर्याय तिरती है। संवर, निर्जरा और मोक्ष... आहाहा! वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को उस पर्याय की अपेक्षा नहीं है। किसकी ? मुनि, केवलज्ञानी अथवा सिद्ध। उस पर्याय की द्रव्य को अपेक्षा नहीं है। द्रव्य तो त्रिकाल एकरूप है। अखण्ड आनन्द प्रभु परमात्मस्वरूप सच्चिदानन्द सत् चिदानन्दस्वरूप एकरूप त्रिकाल है। उसको यहाँ ज्ञायक कहते हैं। ऐसे ज्ञायक की दृष्टि करना और अनुभव में आनन्द आना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। श्रावक और मुनिपना तो... बापू! आहाहा! पंचम गुणस्थान और छट्ठा गुणस्थान, बापू! वह दशा तो.. आहाहा! अभी चौथे का ठिकाना नहीं है। अरे..! प्रभु! क्या हो ? भाई! ऐसा मनुष्यपना मिला है। सब छोड़ दे। चिन्ता छोड़कर इस एक का कर। दुनिया तो महिमा करेगी, दुनिया प्रशंसा करेगी, परन्तु वह साथ में नहीं आयेगी। आहाहा!

प्रभु एक ज्ञायकभाव त्रिकाली को जिसने दृष्टि में लिया और अनुभव में आ गया, उसमें मुनि, केवलज्ञान या सिद्ध तीनों वेश की उसको अपेक्षा नहीं है। आहाहा! राग व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षा उसे तीन काल में नहीं है। रत्नत्रय व्यवहार करे तो निश्चय प्राप्त करे, त्रिकाल झूठ है। व्यवहाररत्नत्रय तो राग-जहर है। राग है, शुभराग है, विषकुम्भ है। विषकुम्भ। मोक्ष अधिकार में आया है न ? आहाहा!

मुमुक्षु :- कठिन पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अभ्यास नहीं है और यह बात चलती नहीं है। चलने में बाहर की प्रवृत्ति करो, यह करो, वह करो। सेठ लोगों को फुरसत नहीं है। ऐसी प्रवृत्ति करे, उसमें रुक जाए। रतनलालजी! आहाहा! हमारे मफतभाई ने तो ... मफतभाई बहुत समय से पड़े हैं। ... भावनगर के सेठ है। बहुत वर्ष से। आहाहा!

प्रभु! क्या कहें? अरे..! प्रभु का विरह हुआ। पीछे मार्ग वाणी में रह गया। आहाहा! प्रभु तो मुक्ति में पधारे। सीमन्धर भगवान वहाँ रह गये। आहाहा! उनकी वाणी थी अन्दर, वह वाणी अन्दर रह गई। हम तो भगवान के पास थे। वहाँ समवसरण में हमेशा जाते थे। अन्तिम स्थिति में जरा परिणाम ठीक नहीं रहे (तो) इस काठियावाड़ में जन्म हुआ। उमराला में। भगवान की वाणी रह गई। आहाहा! त्रिलोकनाथ का विरह हुआ। पंचम काल में भगवान की यहाँ उत्पत्ति नहीं है। केवलज्ञान की उत्पत्ति भी कोई जीव को नहीं और केवलज्ञानी की मौजूदगी नहीं है। उनकी वाणी की मौजूदगी है। उसमें आत्मा क्या है, उसे बताया है, वह यथार्थ है। आहाहा! गजब बात है!

वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को... एक भी अपेक्षा नहीं है। **ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।** मोक्ष भी सादि-अनन्त है। संसार अनादि-सान्त है। संवर, निर्जरा, सादि-सान्त है। आस्रव, बन्ध, पुण्य-पाप अनादि-सान्त है। आहाहा! मोक्ष भी सादि-अनन्त है। प्रभु अनादि-अनन्त है। आहाहा! अनादि-अनन्त महाप्रभु स्वयं, उसकी नजर कर, नाथ! वहाँ जा, वहाँ जा। तेरा देश और तेरा वेश वहाँ है। तेरा देश प्रभु वह स्वदेश है। आहाहा! श्रीमद् ने एक बार कहा है, और बहिन ने कहा है, इसमें आता है। कौन-सा बोल है? ४०१ बोल। पृष्ठ १७६।

ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है। आहाहा! क्या कहा? ४०१। धर्मी का परिणमन विभाव से विमुख होकर, दया-दान के विकल्प से भी विमुख होकर, शास्त्र के श्रवण से भी विमुख होकर स्वरूप की ओर अपने ज्ञायकस्वरूप की ओर ढल रहा है। **ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।** अभी साधक है न? अन्दर एक जम जाऊँ, जम जाऊँ, बस। आहाहा! '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** देखो! विभावभाव हमारा देश नहीं है। आहाहा!

श्रीमद् आखिर में कहते हैं, श्रीमद् की दशा भी ऐसी थी। एकावतारी हो गये हैं। श्रीमद् वर्तमान वैमानिक में है। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। एक भव है। आहाहा! स्वयं कहकर गये हैं और यथार्थ है। एकदेश भोगना बाकी रहा है, ऐसा बोले थे। भाषा भूल गये।

मुमुक्षु :- शेष कर्मनो भोग भोगववो।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। शेष कर्मनो भोग भोगववो अवशेष रे, तेथी एक देह धारी ने जाशुं मोक्ष स्वरूप रे, जाशुं स्वरूप स्वदेशमां। स्वदेश यह। आहाहा! स्वदेश असंख्य प्रदेशी भगवान आत्मा, उसके सिवा सब परदेश है।

यहाँ बहिन कहते हैं, आहाहा! '**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।** आहाहा! **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ?** अरेरे..! छद्मस्थ अवस्था और विकल्प में आ गये। विकल्प-राग तो आता है, पूर्ण नहीं हुआ इसलिए। अरे..! **इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ?** ओहोहो! समकिती को राग आता है परन्तु राग परदेश दिखता है। आहाहा! वह हमारा देश नहीं। जहाँ हमें सदा टिककर रहना है, वह (राग) हमारा देश नहीं। कहा न ? **हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।** विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प अच्छा नहीं लगता। आहाहा! वह हमारा देश नहीं। **यहाँ हमारा कोई नहीं है।** विकल्प असंख्य प्रकार का शुभादि हो, उसमें हमारा कोई नहीं है। आहाहा!

जहाँ ज्ञान, श्रद्धा,... अर्थात् समकित **चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनन्त गुणरूप हमारा परिवार बसता है,...** हमारा परिवार तो यह है। आहाहा! यह अन्तर की बात है, भाई! **हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।** आहाहा! अपना ज्ञायकस्वरूप त्रिकाली भगवन्त, उस देश की ओर हम जा रहे हैं। आहाहा! **हमें त्वरा से...** त्वरा में क्रमबद्ध नहीं छूटता। क्रमबद्ध में आ जाता है। ऐसी दशा अन्दर हुई, वहाँ क्रम में केवलज्ञान अल्प काल में हो जाएगा। ऐसा ही क्रमबद्ध है। त्वरा से कहा, इसलिए एकदम कोई क्रम पलट गया, ऐसा है नहीं। आहाहा! हमें हमारे देश में जाना है, **त्वरा से अपने मूल वतन में...** यह मूल वतन। असंख्य प्रदेशी ज्ञायक मूल वतन है। आहाहा! मूल देश। बाकी सब परदेश। आहाहा!

यहाँ शब्द क्या है ? **त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर... त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है,...** हमारा तो ज्ञायकभाव है। त्वरा से अल्प काल में अपने वतन में जाकर बसना है। **मूल वतन में जाकर आराम से बसना है,...** आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द में बसना है। स्वदेश तो अतीन्द्रिय आनन्द का देश है। **जहाँ सब हमारे हैं।** विभाव में कोई हमारा नहीं। आहा..! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव हमारा नहीं। हमारा स्वदेश नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत का परिणाम, बारह व्रत का विकल्प, यह आत्मा नहीं, आत्मा का देश नहीं। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। **आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।** सब अनन्त-अनन्त गुण ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुता, विभुत्व, सर्वदर्शि, सर्वज्ञत्व, स्वच्छता—ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति का मेरा देश है, वहाँ आराम से अपने वतन में बसना है। आहाहा! यह वतन। काठियावाड़ वतन, फलाना वतन धूल में भी नहीं है। आहाहा! यहाँ तो राग की पर्याय से भी भिन्न ले लिया। ज्ञायकभाव हमारा त्रिकाली, यह हमारा देश है। वहाँ सब हमारे हैं। ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता अनन्ता-अनन्त चैतन्य रत्नाकर से भरा भगवान, वही हमारा वतन है। वहाँ आराम से, आनन्द से बसना है, रहना है। फिर भव-बव है नहीं। आहाहा!

श्रीमद् ने ऐसा कहा, 'शेष कर्मनो भोग छे,' अन्दर ऐसा देखते हैं तो अभी इसी भव में पूर्ण ज्ञायक होंगे, ऐसा लगता नहीं है। 'शेष कर्मनो भोग छे, भोगववो अवशेष रे...' प्रभु! थोड़ा भोगना बाकी रहेगा, ऐसा लगता है। 'तेथी देह एक धारीने जाशुं स्वरूप स्वदेश रे...' अपने स्वरूप के स्वदेश में जाना है। उस समय में उनकी शक्ति बहुत थी। उस समय में वही एक पुरुष थे। एक धर्मदास थे, उस समय। क्षुल्लक धर्मदास। उतना क्षयोपशम नहीं था। सम्यग्ज्ञानदीपिका बनायी है न ? धर्मदास क्षुल्लक। और इनको तो क्षयोपशम गजब का था! उम्र दोटी। ३३ साल में देह छूट गया। क्षयोपशम तो इतना समुद्र... लगभग धर्मी में इतना क्षयोपशम उस समय में नहीं होगा। दूसरा ज्ञान होगा अनेक प्रकार से। वह स्वयं ऐसा कहते हैं, हमें यह थोड़ा भोगना दिखता है। हमें वीतरागता इस समय (पूर्ण) होगी, ऐसा नहीं लगता है। एकाध भव करना पड़ेगा। फिर हम हमारे देश में-वतन में जाकर आनन्द में रहेंगे। वह स्वदेश है। बाकी विकार आदि तो परदेश है। १०५ हो गया। फिर १४०। १०५ के बाद १४०। इसमें लिखा है। किसी ने लिखकर रखा है।

'है', 'है', 'है' ऐसी 'अस्ति' ख्याल में आती है न? 'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता' है ना? वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है। विचार करने से आगे बढ़ा जाता है। अनन्त काल में सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की॥१४०॥

१४०। आहाहा! अस्ति के जोर का है। **'है', 'है', 'है'...** मेरा प्रभु तो है, है और है। ज्ञायकभाव त्रिकाल भाव... आहाहा! है, है और है। भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। तीनों काल रहनेवाली मेरी चीज़ है। आहाहा! **ऐसी 'अस्ति' ख्याल में आती है न?** अस्ति में ख्याल में आती हे न? आती है न, अर्थात् आती है, आती है। आहाहा! **'ज्ञाता', 'ज्ञाता', 'ज्ञाता'...** है, है वह कौन है? ज्ञाता, ज्ञाता, ज्ञाता वह मैं हूँ। आहाहा! है, है, है। है की अस्ति। मेरी अस्ति ज्ञाता, ज्ञाता, ज्ञाता (स्वरूप है)। दूसरी कोई चीज़ मेरे में है नहीं। आहाहा!

वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। क्या कहते हैं? जो वर्तमान पर्याय में आनन्द आदि आया, उतना सत् नहीं है। पर्याय का अनुभव है, परन्तु पर्याय जितना वह सत् नहीं है। पर्याय बताती है कि अन्दर भगवान पूर्ण है। पर्याय बताती है कि अन्दर भगवान पूर्ण है। आहाहा! है? **वह मात्र वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है,...** क्या कहते हैं? वर्तमान में अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ का अनुभव हुआ तो पर्याय में आनन्द आया। ध्रुव तो कहीं पर्याय में आता नहीं। आहा..! ध्रुव का अनन्द भी आता नहीं। ध्रुव तो ध्रुव है, आनन्द तो पर्याय में आता है। आहाहा! कहते हैं, **अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है,...** कौन? वर्तमान सत् आनन्द दिखता है, वह त्रिकाल को बताता है। वह पर्याय त्रिकाल को बताती है। उसका नमूना सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् आनन्द जो सम्यग्दर्शन में आया, वह नमूना ऐसा बताता है कि यह चीज़ पूर्ण है। आहाहा! है?

मात्र **वर्तमान जितना 'सत्' नहीं है। वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा**

है,... आहाहा! क्या कहते हैं? पर्याय में ज्ञाता-दृष्टा का अनुभव होता है, वह पर्याय में होता है। द्रव्य में नहीं। द्रव्य का कभी अनुभव होता नहीं। आहाहा! २०वें बोल में आया है। प्रवचनसार में (अलिंगग्रहण के) २०वें बोल में ऐसा है कि मैं तो आनन्दमात्र वस्तु आत्मा हूँ। ध्रुव तो मुझे आनन्द में आता नहीं, मैं तो जितना आनन्द वेदन में आता है, वह मैं आत्मा हूँ। २०वें बोल में है। समझ में आया? आहाहा! मैं कितना हूँ? मुझे जो पर्याय में आनन्द आता है, मैं उतना हूँ। त्रिकाल की दृष्टि तो है, परन्तु वेदन में त्रिकाल ध्रुव नहीं आता। आहाहा! वेदन पर्याय का होता है। पर्याय ऐसा कहती है... आहाहा! कि मैं पर्याय है, वही आत्मा हूँ - ऐसा कहते हैं। २० बोल में ऐसा कहते हैं। अलिंगग्रहण का २०वाँ बोल है। अलिंगग्रहण का २०वाँ बोल। मैं वेदन में आता हूँ, उतना आत्मा हूँ। आहा..! वेदन में ध्रुव नहीं आता। ध्रुव की मुझे दरकार नहीं। दृष्टि है वहाँ। आहाहा! परन्तु दृष्टि पर्याय है। दृष्टि में ध्रुव है, वेदन में आनन्द है। आहाहा! ऐसी बात है। उसमें है। प्रवचनसार में है न? १७२ गाथा। १७२ गाथा का २०वाँ बोल। १८, १९, २० की रात्रि में चर्चा हुई थी।

१८ में ऐसा है, द्रव्य जो है, उसका भेद, वह मैं नहीं। १९ में, गुण का भेद मैं नहीं, २० में पर्याय का भेद, पर्याय है वही मैं हूँ। मुझे वेदन में पर्याय आती है। वेदन में ध्रुव आता नहीं। आहाहा! समझ में आता है? भाषा तो सादी है। आहाहा! २०वें बोल में है। अलिंगग्रहण के २० बोल में है। मैं अनुभव में आनेवाला आत्मा, वह आत्मा। मुझे तो वेदन में आता है, वही आत्मा है। वेदन में नहीं आता है, वह आत्मा नहीं। भले दृष्टि का विषय ध्रुव हो। आहाहा!

ऐसे यहाँ कहते हैं, **जो तत्त्व वर्तमान में है...** क्या कहते हैं? तू उसकी मात्र वर्तमान अस्ति मानता है। **जो तत्त्व वर्तमान में है...** वह त्रिकाल है। वर्तमान में जिसका नमूना ख्याल में आया, वह चीज़ मात्र वर्तमान ही नहीं है। किसी भी चीज़ का वर्तमान में अनुभव होता है, वह वर्तमान त्रिकाल को बताता है। अन्दर त्रिकाली चीज़ है। आहाहा! **वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है।** क्या कहा? जो चीज़ वर्तमान में आनन्द का अनुभव हुआ, तो वह चीज़ त्रिकाली है। भले त्रिकाली का आनन्द नहीं आया। आहाहा! सूक्ष्म बहुत आया।

पर्याय में जो वेदन में आया, वह ध्रुव आया नहीं। मैं तो पर्याय वेदन में आयी, वही

मैं हूँ। मुझे आनन्द का अनुभव (हुआ), वह मैं आत्मा हूँ। ध्रुव को वहाँ आत्मा नहीं लिया। ध्रुव को ध्येय में ले लिया। ध्येय में ध्रुव है, वेदन में नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। यहाँ कहते हैं, **परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है!** क्या कहा? **वह तत्त्व अपने को त्रिकाल सत् बतला रहा है,...** जो वर्तमान में पर्याय दिखती है, वह त्रिकाल को बतला रही है। वर्तमान में शान्ति का अंश आया सम्यग्दर्शन में, वह त्रिकाल ध्रुवपने को बताता है। ध्रुव भले पर्याय में आता नहीं, ध्रुव भले प्रत्यक्ष दिखने में आता नहीं, प्रत्यक्ष दिखने में आता नहीं,... आहाहा! **त्रिकाल सत् बतला रहा है, परन्तु तू उसकी मात्र 'वर्तमान अस्ति' मानता है! जो तत्त्व वर्तमान में है...** सिद्धान्त कहते हैं। **जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है।** अर्थात् वर्तमान पर्याय जितना तत्त्व है नहीं। कोई भी तत्त्व वर्तमान पर्याय जितना है नहीं। वर्तमान पर्याय जो है, वह त्रिकाली को बताती है। वह त्रिकाली की पर्याय है। आहाहा!

जो तत्त्व वर्तमान में है, वह त्रैकालिक होता ही है। आहाहा! निर्मल की बात ली है, हों! निर्मल की बात है। निर्मल तत्त्व की पर्याय अनुभव में आयी तो वह पर्याय जितना नहीं है, वह पर्याय, ध्रुव त्रिकाल है, उसकी पर्याय है। वर्तमान पर्याय जितना नहीं। आहाहा! **विचार करने से आगे बढ़ा जाता है।...** झुकाव हो जाता है। अनन्त काल में सब कुछ किया। आहाहा! बाहर में अनन्त काल में सब (किया)। आत्मा के सिवा, आत्मा का अनुभव और समकित के सिवा। अनन्त बार क्रिया की। अनन्त बार व्रत लिये, तपस्या की। **अनन्त काल में सब कुछ किया, एक त्रैकालिक सत् की श्रद्धा नहीं की।** त्रिकाली प्रभु भगवान अनादि-अनन्त ज्ञायक, उसकी श्रद्धा किये बिना भटकता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)